

प्रकाशक :

मालोटिया फाउन्डेसन

३, न्यू रोड

कलकत्ता - २८

लेखक के सर्वाधिकार :

सुरक्षित हैं :

मूल्य : तीस रुपये

मुद्रक :

डी टेक्निकल एण्ड जनरल प्रेस

१७, ब्रूकफोर्ड रोड

कलकत्ता - ६९

अने कान्त !

जीवन देह विदेह की-अन्विति हैं।
मूर्च्छा विमुक्त रुचि से इस सत्य को
अनुभूत किया जा सकता है।

रूप को ही-अव्य इति मान कर चलने
का विज्ञान का एकान्त आग्रह रुचि को
विनाश के कगार पर ले आया है।

सर्वान्ना की-प्रतीति का राजमार्ग केवल
अनेकान्त है, वही कुठित चेतना को छेड़
मुक्त कर सकता है।

अक्षय तृतीया
वि.स. २०४४

महेश्वरलाल शर्मा

सृष्टि

दृष्टि

० निरर्थक आशंका	१
० बोधि का शेष	२
० कल्पना का पुल	३
० हैता हैत	४
० निरीह	५
० आनन्द	६
० आकाश	७
० अनुग्रह-अभिव्यक्ति	८
० निरक्षर-अक्षर	९
० संवेदनमय मन	१०
० सत्य का भावमय	११
० स्वर्ग	१२
० जुगुन	१३
० एकालोक्य मे	१४
० देह-विदेह	१५
० देह तप	१६
० स्वप्न-सत्य	१७
० राग	१८
० विनत द्रव	१९
० शाश्वत	२०
० हेमन्ती वारल	२१
० लीला कमल	२२
० अयाति	२३
० मन-भृग	२४

सृष्टि

दृष्टि

० भारी	२५
० लजवंती	२६
० भक्त-देवता	२७
० क्रिया	२८
० बंद	२९
० सृजन का सत्य	३०
० पौष्टशाला	३१
० प्रबुद्ध आत्मा	३२
० मुखौटा	३३
० बांसुरी-वीणा	३४
० गुलबुल	३५
० निकष	३६
० सृजन	३७
० भाषा की मनु	३८
० मै-नुम	४०
० पिया	४१
० विश्रान्ति के द्वीप	४२
० अनुभूतियां	४३
० आराध्य	४४
० ग्रीष्म	४५
० निर्गुण	४६
० अंगुरी में समुद्र	४७
० कठफोड़ा	४८

अन्विति।

सृष्टि	पृष्ठ
० मांत्रिक शब्द	४८
० सांभ	५०
० सांभ - एक चित्र	५१
० सत्य-श्रुति	५२
० कल्पना के पांच	५३
० नागपक्षी	५४
० निमति	५५
० विश्व पुरुष	५६
० गीतों की भाषा	५८
० अपने में विश्व	५९
० सूर्य	६०
० ऊँड़-मुक्ति	६१
० प्रति क्रिया	६२
० विशेषणों का कोश	६३
० आषाढ का पहला दिन,	६४
० काव्य	६५
० कविता	६६
० विडम्बना	६७
० आकांक्षा	६८
० काशी	६९
० अग्नियों	७०
० चेतना की दूध	७१
० मे.	७२

अन्विति !

सृष्टि	६५
० कसौटी !	७२
० आलम्बन !	७६
० पुनर्धार	७४
० सन्दर्भ	७५
० भमता !	७३
० शिशु-मन	७७
० महाप्रश्न	७८
० गति-अगति	७९
० अभिनय	८०
० आत्मन्	८१
० श्रद्धा	८२

राजा
सम्यक्त
को

० निरविक आशंका।

शूल पर है
कुआरे सत्य की
प्रिया की सेज,
करगी अहिंसा की-
सम्पूर्णता को
परिभाषित
तमंचे की गोली
देगा विश्वास को
अखंडता का
प्रमाण पत्र
कालकूट का खण्ड पत्र,
व्यर्थ
धवसाते हो
तुम तो मित्र
बेसी पहुँचा है
तुम्हारा सत्य
तुम्हारी-अहिंसा
तुम्हारा विश्वास
अभी उस
पराकाष्ठा पर
जब कि
देगा तुम्हें कोई
शूनी. गोली या कालकूट।

31.3.87

० वोचि का क्षण ।

इडा
वन गई
पीड़ा,
लौट रहा
मनु
फिर श्रद्धा की ओर,
बन गया
मटक कर
मन-भृग
जिज्ञासाओं की-
मरी जिन्दा के पीछे
वन गई
पराजय की- ग्लानि
आत्मबोध का क्षण,
जान गया गौतम
निरर्थकता
हठ भोग की-
चाहते उसे अब
विभी मुजाता की-
संवेदना की रीढ़
पान कर जिसे
हो उठे संश्लिष्ट
फिर
बेचना का वोचि नृक्ष ।

० कैल्पना का सुरा।

कहां है

काल फणचर का

विवर १

उंस लेतां

जो गोरे दिन

सांवली रातों को

न जाने

विचर से निकल कर ?

बचाने के लिये

पूज को

इन्द्र के कोप से

उठाया था वृष्ण ने

गोवर्धन

अंगुली पर,

क्या नहीं होगा

फिर कभी-

अवतरित

ऐसा कोई महाबली

जो रख दे

उठा कर

हिमालय का

शैल शिखर

विवर के पुरा ५८१.

१.४.४७

३

० हैता हैत !

दिवता है

एक जो

आकाश

बद है

अनन्त

आकाशों का

समवाय,

दिवता है

एक जो

पारवार

बद है

असंख्य लुंघों का

सहवास,

कर लेता

निमज्जित हैत को

अपने में

गुणचरिता का

अहैत !

१५-५-४७

४

० निरीह !

कर दिये
अभिव्यक्तियों के
सच्ची-कोर बन्ध
लगा कर
वर्जनाओं की
अगिलाएं
भर गई
धुल कर
कौमल्य अगुमूर्तियों
लादे
कान्धों पर
संवेदना का शव
लगा रहे मोरे
निरीह बेचारे
'मानि निरजीवी हो'।

(म.म. ६)

० आनन्द !

सुर
कपूर
उड़ जाता
निमित्त भर में,

दुर
की-लड़
बैठ जाता
पलकी मार कर,

आनन्द
आत्मा के
मानसरोवर का,
निर्मल शतरंज !

१५.५.४७

६

० आकाश।

घटना है

रूप, रस

रंग, गन्ध

जो नहीं

घटना

वह है

आकाश,

घटने का

साक्षी

अघट।

15.4.87

6

० अनुभूति - अत्रिव्यक्ति !

चाहिये
चेतना के
चरणों को
संपूजित
होने के लिये
कोई
शापित महिला,
जाती है
इसी लिये
अनुभूति
करने
स्वयं को
अत्रिव्यक्त
शब्द के पास !

15.4.87

८

० निरक्षर-अक्षर !

हैं
आकाश की
पुस्तक में
संकलित
दिन का निबन्ध
रात की कविता,
यह है
समय का पाठ्यक्रम
पर
नहीं लगता
उस का मन
पलटता रहता
यों ही—
निरर्थक पन्ने
रह गया
निरक्षर
बेकार अक्षर !

८

16.4.87

० સંવેદનમય મન !

નદિયાં
અભિવ્યક્તિયાં
હિમખખ વી
પ્રતિવિમ્બિત
ગગન
પરાશ્રિત
અકિંચન
ક્ષિતના
સંવેદનમય મન
દિશ્વતા જો
સમાચિત્કથ
આત્મલીન
નિરંજન !

16.4.87

૧૦

० सत्य का माध्यम !

अक्षर से
नहीं
शब्द से है
मेरी पहचान
नहीं काली
जिसने दृष्टि ग्रहण
कर ली है
उसे कान
मही जेतना का
कोई रंग
रूप
सत्य है
सत्य का माध्यम !

17.4.87

११

० स्वचर्म !

नली
निमलता ।
अपने आप
छट मुख से
अच्छो छवि नीर
पर
बन जाता
पेंदे का
सूक्ष्म छिद्र
उल के लिये
सहज मुक्ति का
हो।

22.4 87

१२

ગુગુનું !

વૃક્ષો દી-
કૌંઘ ઘની તીલી
મર ગયે
અસંખ્ય સૂર્ય
રહી- અનજલી
દનેદિલ વતિકા
પર
રહા નકાલા
૧૬ નજા લા
ગુગુનું
મહાકામ
નિરંકુશ
તમ વી લતા !

૨૫.૫.૬૭

૧૩

भरा हुआ
 है
 विचार के
 प्रसर शोष के
 आज भी
 मेरा मन-तूणीर,
 नहीं उई है
 शल्य
 रक्त भर भी
 देर-चनुप की
 प्रभंवा
 पर
 भांग रहा है
 संस्मृति के
 नाम पर
 जरा जीर्ण
 विकृति को का
 ह्वय भू गुरु
 शोण
 फिर २ क्षिण में
 मेरी-येतना का
 केन्द्र
 अगुहा
 जिस से कि मैं
 नहीं कर सकूँ
 बिछ
 राजकुल की-
 अहमन्यता के प्रतीक
 भौंकते
 शीतल का भुलव!

28.4.87

○ ६६ ॥ ६६ ॥

३६२

अ. ६६ ॥ ६६ ॥

अ. ६६ ॥

६६ ॥ ६६ ॥

६६ ॥

६६ ॥ ६६ ॥

६६ ॥

६६ ॥

६६ ॥

६६ ॥

६६ ॥

६६ ॥

६६ ॥

६६ ॥

६६ ॥

६६ ॥

६६ ॥

० देह तप !

मैं

सूर्य

स्वयं रचता

पुनर्जन्म के लिये

अंशुवार ,

मोगली

प्रलय की पीड़ा

माता दिशा ,

वामना

अंगुली-

पिता आकाश ,

मोहा विष्ट्र मैं

नहीं कर पाता

क्षय

सन्वित कर्म

निरर्थक

मैं

देह तप !

२५.५.४७

० स्वप्न - सत्य !

नही आर
सुभनं
आर गया
एक सपन
रहा
वृत्त पर
अंतर में
दिपा
सत्य
तरु की-
साधना का फल !

1.5.87

१७

० राग।

नहीं

दोषी झूल

काहीं

मूल में

झूल

हुई कुंठाएं

झूल

वा। शायद

गुलाब के मन में

राग का बखूल!

उ.५.४७

१८

० विनत दूव !

जनमती है
पंनपती- है
विनत नन्ही दूव
विशाल विटपों
कुलुमित लताओं की-
घोर उपेक्षा के बीच
पर
रह जाती-
अपलक
लज्जानत
रूप गर्विता वनश्री
जब
ढंकेली-
उस हरिताम्र के
होंठों चमक ले
जंगी चरती-
अपना शील ।

० शाश्वत ।

दुःख कर
दिन
वन जाता
चरती की
कोल में
हीरा,
जल कर
रात
कोमला,
बदलता
रूप
नहीं होती
निशेष
उज्य की सत्ता ।

उ. ५. ४७.

२०

० हेमन्ती बादल !

आ गया

आकाश पवन संग

आकाश के आंगन

गजदन्ती

हेमन्ती बादल ,

नहीं साथ

सन्दली बिजलियां

नहीं साथ

मोहक इन्द्रधनुष

साथे मौन

चातक, मोर

यह कोई छलिया

कहां चित चोर ,

नहीं उठे

सोये हल

चिढाता मुँह

जोहर का जल

हुआ बोझ

निरर्थकता का

लौट गया

दबे पांव

अपने गांव

हेमन्ती बादल

० लीला कमल !

यहां कहां
लीला कमल ?
दल दल
तट का छल,
आगे चल
दीर बे वा
भरकत जल
फिर
लहरों का जंगल
पर खेगा
अंतः बल
हुआ
अगर सफल
होगा
हस्तगत
चेतना का
उत्स
लीला कमल !

म. ५. ४)

२२

० यथाति !

नही होता

शब्द का जनक

विचार

कभी-बूढ़े,

ले लेता

मांग कर

यथाति भी-तरह

संतान का लक्षण,

हो जाता

वे-चा। शब्द

असमय में

जराजीर्ण

नगण्य

बिना मिले

पिता से

प्रेम

असम, अवर्ण्य !

5-5-87

२३

० मन मृग !

मन चंचल,
आरवो मे
विम्विल
मृग जल
केवल छल
चर दूबि
पग लल
मत अटक
जंगल
बैठा
लुब्धक
साधे
शिर-फल !

5.5 87

२४

० माटी !

लगा बनाने कुंमकार जब
प्रतिमा, माटी बोली,
उठा खेत से मुझे यहाँ क्यों
ले आये अज्ञानी ?
नहीं देवता देवी बनना
दम्भ भरे अभिमानी,
रहूँ कृपक के हल के नीचे
रचूँ हरित रांगोली !
नहीं नामना मिले स्वर्ण का
रत्न जड़ित सिंहासन,
धृत आपूरित दीप माल से
करें भक्त जन अर्चन,
रहूँ बीज की जननी, भर दूँ
मैं गूँथे की ओली !
नहीं चाहिये वसन रेशमी
मठ-मंदिर की आरा,
मुक्त गगन के तले मिले प्रिय
श्याम मेघ की आरा,
वही फेंक आ, मैं पहनूँगी
दुर्गा रत्न की-ओली !

० लज्जवंती !

नहीं
सह पाई
कोमल अंगुली का
उल्लिखित संस्पर्श
सुकुमारी लज्जवन्ती,
मुँद गये
नयन किसलय
मर गये
प्राण में अज्ञात मय,
कितनी-
विकसित
इस वन्य कन्या की-
वानस्पत्य चेतना ?
काश !
बदल जाती-
स्पर्श सुख की-
नागर वासना
दिव्य प्रेम में !

7.5.87

24

० भक्त - देवता !

भक्त
वह
करते समय
पूजा
जाये
कामना भूल !

देवता
वह
तरसे लेने
भक्त की
चरण धूल !

7.5.87

26

० क्रिया।

भेद संकती है
प्रति क्रिया का
अद्वैत व्यूह
केवल क्रिया,
नहीं बनती वह
अतयच्छ की
देह अर्थात् क्रिया
देखती वह
निरावरण दृष्टि से
अपनी
स्वतंत्र सत्ता
जो है
चेतना का
अंतिम सत्य !

१.५.४७

२८

० वूंद !

वन गई
अहिल्या
स्वर्ण पात्र में
भरी वूंद !

वन गई
राम का चरण
माटी में
पड़ी वूंद !

१०५८७

२५

० सृजन का सत्य ।

शूल
फूल
दोनों में
सृजन का सत्य,
यह है
करता
अकथ्य के
कथ्य,
लिखता
तम भस्म से
समय का
का लिखा स
अपना
महाकाव्य
आदित्य ।

11.5.87

३०

० पौच साला !

मल
लेने दो
किसी भी
विचार को
गहरी जड़ें
शोषेंगी
जीवन-रस
फूटते ही
अंकुर
रोप दो
शब्द के
गमले में,
रहो स्वयं
बन कर
मात्र नर्सरी।

११.५.४७

३१

० प्रबुद्ध आत्मा ।

जीव का
जनक
जल,
भूमि की
जननी
अग्नि,

नही
छूट सकते
वंशगत विकृतियों से
जड़ तत्व,

केवल
कर सकती
प्रबुद्ध आत्मा
स्वयं को
संस्कारों से
विमुक्त !

११.५.४७

३२

० मुखौटा !

लगाये
आदम का
मुखौटा
पुजा हुआ है
शैतान
बनाने
समग्र चरती को
चिता
आकाश को
पत्नीता,
लगता है
समीप है
सर्वनाश का शण
नही बचेगा
कोई भी नसिकेता
कहने के लिये
यम के द्वार से
सदैव लोटने की कथा

व्याप जायेगी
 महाश्मशान की
 नीलवा
 केवल रहेंगे
 अपलक ताकते
 एक दूसरे को
 नंगुलक चन्द्रमा
 वांछा अरती,
 कदाचित्
 उतरे
 अनन्तकाल बाद
 फिर कोई
 विकसित जीव
 करने खोज,
 मिल जाय
 उन्हें
 गहरी पत्तों के तले
 रूखे
 डायनासोर की तरह
 कुछ मानवी कंकाल ।

० वांसुरी - वीणा !

कितनी-

प्रिय हैं

मुझें

अच्छ-रसिक

छिद्रमभी वांसुरी ?

होना

जिस से

उत्तुखनित

मेरी-आत्मा का

संगीत,

क्या करें

लेकर

तुम्हारी-

अछिद्र वीणा ?

जिसे हैं

केवल

मुझ से

पाणिग्रहण की-

अपेक्षा !

11.5.87

३५

० गुलमुहर !

खड़ा है
ठह ठह करते
रक्त फूलों से लरा
गुल मुहर,
नहीं करता
विशुद्ध उल्लेख
हरिण्यकश्यपु श्रीलक्ष्म
होलका लू
वह अग्नि स्नात
प्रह्लाद
निर्विषाद
देता छाया भिस
स्नेह दान
महापाण
गुलमुहर !

12.5.87

० निष्काम ।

लगता है

कोई

सु-मर

कोई

असु-मर

क्या है

मन के पास

इस निष्काम का

निष्काम ।

ह्याह

वसी है

उस की

अंतःचेतना में

कोई

काल्पनिक अवशिष्ट

जिस की.

देह भूषि की.

अनुरूपता - प्रतिरूपता

हू

प्रतिबद्ध दृष्टि का

चयन, अचयन !

12.5.87

० सृजन ।

मुझे है
शब्द की
प्रतिष्ठा का दधान,
रखता हूँ
वही
जहाँ जिस का स्थान,

अनुशासित
मेरे मानाकुल हृदय
उनमें परस्पर
रक्त का समवन्ध,

नहीं सृजन
मेरे लिये
व्यसन,
वह संजीवन
प्राण का
स्पन्दन ।

13.5.87

० मायावी मन !

नीम
मंजरित
कितना मचुरिम !
भूल गई
बौराई सांसें
प्रेमा सरवी
रसना का अनुभव
पिला
विषय का
भादक आसव
ठगता रहता
मायावी मन
अजित इन्द्रियं
केवल साधन
करता वह
रखिया
आस्वादन ।

13-5-87

३६

० मैं, तुम !

केवल
मैं हूँ
मेरे लिखे
इस बीबी में,

करता हूँ
समर्पित
तुम्हें
अन लिखे गीत
जिन में
तुम हो ।

13.5.87

४०

० पिया !
 दुज की
 चन्द्र कला सी
 तुम्हारी
 हिनत
 कर देती
 तरंगित
 गावार्जव,
 भर लेता
 अंक में
 कटि शीण
 वीण
 आलापता मल्हार
 हो उठता
 करुणा द्वे
 निरञ्ज नम
 खिर आते धन
 डेरती
 विरहाकुल माटी की-
 आत्मा
 जातकी
 पिया ओ पिया !

० विश्रान्ति के द्वीप।

नहीं है

थकान

अन्त मात्रा का,

मले ही-

धबल कर

अपने अपार से

उत्तर आये

पारावर के हृदय में

विश्रान्ति के द्वीप

पर जाना होगा

उस की समग्रता को

कूल के - समीप

जिस की

छाती पर अंकित है

असंख्य अंगुणांगी

लहरों का देहाभास

जो अर्पित कर

उसे

शंख. द्वीप. मुक्ता

लौट आई थी

पुनः

मंजुस्वार के झोड़ में ।

० अनुभूतियां ।

आती
प्रतिक्षण
अनुभूतियां
चाहती
दूँ उन्हें अभिव्यक्ति
नहीं मेरे पास
इतने निरर्थक शब्द
कर सकूँ पूरी
सब की कामना ।
उतारता
कलम की नोक से
कागज पर
केवल उन्हें
जो नहीं होती
विगत
समय के साथ
करती
संजीवित
किसी गौतम की-
मोड़ संवेदना
जो चरकर अंक में
खींच लेती-
आहत हंस की
रक्तिम ग्रीवा में
झंसा
किसी हथारे
देवदत्त का शर ।

18.5.87

४३

० आराध्य !

॥
मे

मेरा आराध्य
नहीं पहुँचने देती
मुझे
मुझ तक
असों की भीड़
हो कर
काध्य
सुनाने लगता
उन की मनोतिथि,
भूल जाता
ये, है—सुनौतिथि
साध्य के पथ की,
होते ही-लं डित तप
दूर जाती
आत्मवासी विमूर्च्छा,
पड़ताती
करता
आत्म आलोचना
पुनः अनुभूतता
यह सत्य
मे
मेरा साध्य !

० ग्रीष्म !

वन गंधा
दिनमणि
काल भैरव
फणि
करता दक्षित
रश्मि जिह्वाओं से
अदिनी का गान
लगाय गया
गुल
हस्रित हिम
अनामृत
गिरि-स्तन
सकोलित
सरिता शिखर
मूलसी
रोमावली वन की
हुआ हलध
सिन्धु नीच का
नीली-वन्ध
करने लगी
आर्तनाद भिराए
सिंहर उठा गगन
खोलेंगे नभ
अब हमरह
होगा अहम
शीघ्र भुजग
धुन पड़ता
जलम डमरु का नाद
तमुलता
नड़ित त्रिशूल
लगता
होगी फिर संजीवित
लिपुर्जित तपुका ।

० निःशब्द !

नहीं
समर्पण,
मैं
पुरुषार्थ,
निधति
निर्मिति
मेरे गत की,
स्वतंत्र स्वने में
आगत अनागत
बनूं अंगुलिमाला
या तयागत
यह निर्भर
मेरे विचार पर,
नहीं समर्थ
कोई दे
वरदान, शाप
करता
अर्जित
स्वयं पुण्य पाप
होंगे
क्षयित ये
होते ही मन
कुण्ड विमुक्त
आग !

19.5.87.

४६

० अंजुरी में समन्दर !

अप
एक अश्रु
मेरी हथेली पर
तुम्हारी
देखा मैंने
प्रतिबिम्बित था
'मैं'

ढलका
एक अश्रु
तुम्हारी हथेली पर
मेरी
देखा तुमने
प्रतिबिम्बित था
'तू'

लहर उठा
अंजुरियों में
एक समन्दर
संवेदना का !

० कठफोड़ा !

ठक, ठक, ठक
टूट गई
चरती पर पसरी
दोपहरी की
कच्ची नींद,
मार रहा
वज्र-चोन्न
तने पर
खुट बढई,
नहीं लुभाते
रसील फल
सुरमिल सुमन
उस का व्यसन
करना
भूल में देदे
लेने भेद
किटप के
अन्तर का,
वह मूढ
कैसे जावेगा
गूढ
जो है
विदेह !

20.5.87

४८

० मांत्रिक शब्द !

लीन कर

ले आता

चुम्बक की तरह

मांत्रिक शब्द

फलम की नोक से

समग्र सन्दर्भ को

कागज पर

अनायास ,

बली है

सृजन .

मानमती का कुत्ता

है अनुभूत

संवेदन की

एक सत्य प्रक्रिया

निष्पत्ति जिस नी-

कोई कालजयी कृति !

21.5.87

४६

० सांझ !

होते ही
तिरोहित
सूर्य
झुटपुटा गई
कोमलों की सांझ
भर गये
नयन में
नखत अश्रु
पुंछ वाया
मांश का सिन्दूर
बह आया
शितिज कपोलों पर
वाजल
पड़ा नभ-आंगन में
खंडित चूड़ी सा
दूज का-चांद
कहता
लुटे सुहाग की व्यथा

० सांझ - एक चित्र !

फर गया
समय की-
डाल से
सूखे पत्ते सा
एक और दिन,
डब डबा आई
गगन की- आँख
बैठ गई
आकर
पुली-की के नीउ में
साझ की-
चिड़िया
दवाये
चोंच में
पंख भी का
कुतरा हुआ
चन्द्र-माल !

० सत्य - झूठ !

नहीं चलता
सत्य
कत्ती. पगडंडी पर
करती
अगुसरण
पगडंडी उलका
हो-ते ही-
ओ आन सत्य
बन जाती
वह
झूठ का
राजमार्ग !

27.5.87

५२

० कल्पना के पांव !

बदलती
प्रलयगिनी सी
देहकली
बोपहरी में
उगा ले
भन में
एक बरगद
अनुभूत
शीतल सधन छांटे
कर दे
इस की
पुलक्य जटाओं में
उलझा कर
मधुमान्त के
'पंचंड सूर्य' को
निहतेज
लगा ले
कल्पना के पांव
पहुंच
ओ श्रान्त बटोही-
निरापद
भयार्थ के गांव !

28.5.47

५३

० नागफणी ।

बगिया की
लक्ष्मण रेखा
नागफणी
अपने ही
अस्तित्व की-
विडम्बना ।
कितनी- कुसंग
अथावह
चिनौली
कोठिन सी
अप्रावकी- देह
नहीं देता
मूले मटके की
कोई नयन
इस अस्पृश्या को
स्नेह,
लगाने है
केवल एक
मोंडे कुतूहल के बिन्दु
नाग गोलियों में
कि मौके
देख इसे
उत्तिवहू रक्षिका
सौ-सर्व बोध ।

० नियति!

नहीं है
किसी भी
समस्या का
शाश्वत समाधान,
निहित है
हर समाधान में
एक नई
समस्या का बीज
जो होगा
प्रक्षुब्धित
करने ही
परिस्थितियों का मौलम,
रंजना होगा फिर
उसकी
जटिल जड़ों की
लपेट से
बचने का
कोई उपाय
यही है
नियति का
वह चकव्यूह
असमर्थ है
जिसे भंग करने में
चेतना का
निरक्षोभ
अभिमन्यु ।

० विश्व-पुरुष ।

लथपथ
रक्त से
विराट देह
विश्व पुरुष,
नही किया
शून्य विशून्य
किसी अदृश्य
रिपु ने
ह्वंय हो कर
संज्ञाहृत
संवेदनाशून्य
कर रहा
निरन्तर
अपने ही-
अंग प्रभंग पर
भारत पर
उस हिमाल
आलसवन
लेने के बिचे-
जिस के एक मुख ने
प्रतिशोच-
इसरे मुख से
निगल लिया था
आत्मघाती
विष-फल ।

० गीतों की माला।

पिरोई है

मैंने

अनुभूति के

अलख चागे में

दिव्य शब्दों के

मनकों से

गीतों की

सुवासित माला,

खड़ी है

मेरे सामने

हीरक-नीलम

स्वर्ण-रजत

हाड-भांस की

अनेक अनुपम

हृदय हीन प्रतिमाएं

पर मेरी दृष्टि में हैं

वह भिक्षुक

दे रही- हैं

जिस की संवेदना

मिली रोटी में से

आचा टुकड़ा

उस अपरिणित

रुग्ण सूरदास को

जो लेता है

अनदेखा

रो दिन से भूखा

मंदिर की

संगमर मरी सी दियों पर।

१ अपने में विश्व।

चञ्चलता है
चिनगारी के
हृदय में
मस्मक रावानन,

मञ्चलता है
बूँद के
प्राण में
अपार पारावार,

निकलता है
क्षण के
विवर से
सर्वगुप्ती महाकाल,

जनमता है
शब्द की.
कोरव से
सृजन का ब्रह्मनाद,

बोझेगा वर
अनुभूतेगा जो
अपने में विश्व।

० सूर्य !
 नहीं बंधा है
 सूर्य
 दिशाओं से,
 भ्रम
 उदय - अस्त,
 तल तम
 अक्षम
 करने में लाजात,
 वह
 आलोक हनात
 हिरण्य पुष्प
 उल्ल
 ज्वेतना का
 र-वली रश्मियां
 पीयूष वर्षा मेघ
 होली-
 गर्जित
 मयुवंती-त्राली
 करली-
 पुलकित
 रूप रंग रस गन्ध
 वह
 पुष्पम हन्य
 सृष्टि के
 महाकाव्य का !

० छेन्हे मुक्ति !

बिना बिद्ये
प्रतिरोध
वासनाओं का
फैले होगी
संभूत
प्राण में
संजीवनी-अर्थात् ?
बिना सुने
अंतर्वासी
अच्युत की
गुरु गंभीर गिरा
'न दैनं न पलायनं'
नहीं टूटेगी
जीवन के कुल स्तंभ में
त्रस्त रहने
मन - अर्जुन की-
विमूढ भ्रष्टा,
उठे सम्मान
चिन्तन के गाण्डीव की-
उलंछा पर
विचार का
प्रखर शर,
कर छेन्हे मुक्ति
विदूढ़ के
चेतना के
संशयशून्य जीविका
मोहाकुल वस !

० प्रतिक्रिया।

सोचो
देने से पहले
१०२
किसी कुण्ड को
क्या होगा
इसकी प्रतिक्रिया ?
स्वात
काण्ड का
निर्गत
बन जाएगा तुम्हें
एक ऐसे
संक्रास से
जो बन जाता
राम का
वट शर
नहीं छोड़ा
जिसने पीछा
उस काक जपेन्त का
लगाया
जिसकी चंचु में
लड्डू
शीतल के
अंगूठे का ।

26.6.86:

० विशेषणों का बोझ

छोते हैं
बेचारे
तथा अक्षित
बड़े लोग
बोझ
आरी भरकम
विशेषणों का
उल
मजदूर की तरह
जिस के
सिर पर रस्सी
स्वर्ण जेठिका
नहीं हैं
उल की- अपनी ।

28.6 ९7.

६२

० आषाढ का पहला दिन !

आया
उतर
शुक्र-रथ से
बढ़ने
बलुआ को
आषाढ का पहला दिन
बाबू
बाबू की-
जामुनी पाग
रौंसे विभूत की
फलकी
पहने सुरभगुवा
हार,
देखे
उमरों रैन
सूखे पोलर
गल आभामन
बह चला
बभनों से नीर
तोड़ कर
मेढ रैन की
नरक
पोलर का
पहुंचे आभू
प्रिया के
पीटर की- जौपाल,
त्रमके लुभे
चेहरे
उठे हल
नाचे मोर
पुलकाया चानक
हुई हरी-
विरह विदग्ध
हरोट हिनग
भारी की- कोरल

० काल !

लांछ कर
समय की सीमा
नहीं
वन पायेगी
कोई कली
फूल
कोई सुमन
फल ,

आज कल
कल्पनाएं
कुण्डित चेतना की

काल अखंड
करेगा पूर्ण
हर खण्ड को
देकर
अपने
अनुशासित
व्यक्तित्व की
पूर्णता !

4.7.87

६४

० कविता ।

नहीं है

दूर की

कौड़ी लाने की

कला

कविता ,

खडे हैं

प्रतीक्षारत

गुम्हारे

आसपास

जीवन के

वे

महान सत्य

मिलते ही

जिनसे

हृष्टि

हो उठेंगी

मुखरित

स्वतः

काल जमी नृचाएं !

५.७.४७.

० विडम्बना।

कल्पना है

गणित

जाना जा सकता है

उस से

पौद गलिक प्रचार्य,

चिंतन है

देशनि

जाना जा सकता है

उस से

आत्मिक सत्य,

स्वीकारता है

विज्ञान

काल्पनिक अंक,

नकारता है

अनुभूति त अक्षर,

यह

विडम्बना

नही बनने देती-

उसे ज्ञान

जो है

समग्र का परमिवाची ।

6-7-87

६६

० आकांक्षा।

नहीं है
आकांक्षा
कि कल
कोई
सिद्धि प्राप्त.

—वाहता हूँ
प्रगति
स्वभावगत
वासनाओं से
हो गया है
खंडित
जिन से
अपनी जीनी
लुप्त तुल में
आत्मा का
अक्षंड
आनन्द।

6.7.87

६७

० काश !

रह गई
हृदय चीन
शिलाखंडों पर
टंकित
नवागत की
कलशा ।

सूर्य गई
मानवीय
संवेदना से
निसृत
संवेदना की-
निर्भरी ।

काश !
होता
शिलाखंड
मानव-हृदय !

6.7.87

६८

० अगला ।

खर खर
रहा हूँ
कब से
बाहर निकलने
के लिये
अपने ही-
घर का बन्द द्वार ?
नहीं जानी-
मेरी
अमित इष्टि
उस अगला पर
लगा कर
जिसे
क्षण भर पहले
क्रिया था
स्वयं को
सुरक्षित अनुभव,
होने ही-
एकान्त
आ गया
बाहर
हृदय का भय
नहीं खोल पाती--
विजड़ित
अगला
मेरी भीत
चेतना की-
सुन्न अंगुलियाँ ।

०-चेतना की दूब !

मैं
मान
एक बिन्दु
समा गया
मुझ में
अनन्त सपनों का
सिन्धु,
उमड़ते
धुमड़ते
आतस के
मतलब से
गीतों के
काजलारे में
बहसते
चार सप्ताह
हरिमा जाली
बार बार
जीवन की-
प्रकार रूप से
कुम्हळाई
चेतना की-दूब ।

० मैं !

माता
चरली
पिता
सूर्य
शिशु
मैं

जुड़ कर

गुम ले

मृत्युएं

वन जाती

वय

नहीं होमा

क्षय

कभी-

बीज चेतना का

निहित जो

भुम में ,

गत आगत

अनागत

केवल

सब्सो व्यन

उस काल पुरुष के

जिसके

होने का साक्षात्

एक मात्र

मैं ।

6.7.87

० कसौटी !

मत हो
प्रतिबद्ध
सत
असत से
मन !
लेते ही
संकल्प
जनमे गा
राम के साथ
रावण,
हो जायेगा
वामन
जय पराजय की
अर्थियों से
चेतन
केवल है
करणीय
अकरणीय का
निकष-
विवेक
कस
उस पर
स्वयं को
होना
प्रत्यक्ष
कलमों में, कंचन !

14.7.87

62

० आलम्बन !

देखा
सपने में
हेम मृग,
नहीं
बन पाई
बाधा
भू-क्षा
इन्द्रियों की,
लगा
दौड़ने
उस के पीछे
बन कर
हम
हाथ, पैर
नयन
अमूर्त मन
ले कर
भटकी हुई
आत्मा का
आलम्बन !

११.१.४१

० पुरुषार्थ !

केवल
विशेषण
क्रिया के
तप, जप
यम, नियम,
पुरुषार्थ
सहज प्रार्थना
देती जो
कर
मन को
अ-मन !

20.7.87

68

० सन्दर्भ !

नहीं

सुनी है

अगर

कथा

राम

रावण की

कैसे

पहचानोगे

कोन सा है

किस का

मुखौटा ?

जानना होगा

पहले

सन्दर्भ

अनुभूतोगे

तब

जुड़ा है

किस शब्द के

मुखौटे से

सत्य

किस से

असत्य ?

20.4.87

6५

○ ममता !

आंख
खुली तो
देखा
चूम रही थी
गोरी छूप
मुँडेर पर
झरे
लुभे दीपकी
संवलाई
बाती ।

० शिशु-मन ।

ढल-वली

वय,

नहीं हुआ

वयस्क

शिशु मन ।

करता है

हउ

उस के लिये

नहीं है जो

उस का प्राप्य,

दौड़ता है

भूँद कर आँख

इन्द्रधनुषी सपनों की

तितलियों के पीछे

खा चुका है

ढोकर

अनेक बार

निर्मम सत्य की

बहा है रक्त

पर अपने में

आसक्त

नहीं संभल पाता

वेचारा

शिशु-मन ।

० महाप्रज्ञा ।

आर
गिरा
मुद्रित झूल
भूल के
शरण में,
महाप्रज्ञा
वह
गया
स्वप्न की
शरण में ।

17.8.87

७८

० गति-अगति !

गति के
प्रतीक
सूर्य की
हेमांग रश्मियां
सुदूर से
चल कर
पहुंचती हैं
चरती पर !

अगति का
प्रतीक
अन्ध्या अन्धकार
उठ कर
क्षितिज से
पसर जाता है
गगन के
आंगन में ।

० अभिनय ।

अगर चाहते पाना प्रियतम
सीखो पहले खोना,
घरों अंक में बीज, अकिंचन
रज उगलेगी सोना,

बिना बिसारे स्वत्व, किसी का
क्यों अपनत्व मिलेगा ?
मुरझि त्याग का भाव जंगे तो
क्षण में सुमन खिलेगा,

देना तो लेने का केवल
सहज सरल अभिनय है,
नहीं जानने का विस्मय ही
चिन्मय का परिचय है ।

० ओ आत्मन् !

कर
स्वयं पर
अनुकम्पा
बोल
विवेक की
अंगुलियों से
रेशमी चेतना में
पड़ी गांठ,
नहीं तो
कैसे पहुंचेगा
प्राण-कूप के
निथरे ज्ञान-नीर तक
देह पनछट का
मन छट
ओ आत्मन् !

20.8.87

८१

० श्रद्धा !

मत रख
संशय की
सीलन से भरे
मनः काष्ठ में
विश्वास की
कुंआरी चिनगारी,
कर देगा
कसैला घूम
अवरुद्ध
प्रार्थना रत
कंठ,
चूक जायेगी-
लक्ष्य
रक्तिम दीठ,
झेलने दो
अभी इसे
ज्ञान-सूर्य का
सहज आतप,
सूखने दो
वासना की नमी,
वन जायेगा
यह स्वयं सूर्य
धू कर
हृदय की श्रद्धा की
एक अकिंचन
तीली !

